शोध मंथन, 2017 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X, Impact Factor 3.8942 (ICRJIFR)
UGC Aproved Journal No. 40908

राष्ट्रवाद का अवधारणा के परिपेक्ष्य में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास

डॉ0 निवेदिता कुमारी

उपाचार्य एवं विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान विभाग, गिन्नी देवी मोदी गर्ल्स (पी0जी0) कॉलिज, मोदीनगर

सारांश

राष्ट्रवाद की अवधारणा का भारतीय परिपेक्ष्य में उदय का अध्ययन करते समय हम इसकी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को आध ाार बनाते हैं क्योंकि यह भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद का आधार रहा है। वर्तमान राष्ट्रवाद के सिद्वान्त में विशाल भौगौलिक क्षेत्र के साथ–साथ सांस्कषतिक, भाषाएँ एवं परम्पराओं के तत्व महत्वपूर्ण है। वैश्विकरण के युग में राष्ट हित को राष्ट्रवाद के आधार पर अधिक अचौत्यि पूर्ण तरीके से समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध–लेख में भारत के राष्ट्रवाद के विकास को आधुनिक राष्ट्रवाद के अर्थ में समझने का प्रयास किया गया है।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ0 निवेदिता कुमारी, ''राष्ट्रवाद का अवधारणा के परिपेक्ष्य में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास'',
शोध मंथन जून 2017,
पेज सं0 79–86
http://anubooks.com/?page_id=2030
Artcile No. 14(SM421)

''वयं राष्ट्र जाग्रयाम्'' – ऋग्वेद

आधुनिक अर्थ में राष्ट्रवाद यूरोपीयन चिन्तन की देन के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह लैटिन भाषा के 'नेशियो' (Natio)शब्द से उत्पन्न हुआ शब्द है जिसका अर्थ है मूल या जन्म। राष्ट्रवाद में जन व कबीला एवं वर्ग–जो जन्म, भाषा, सुमदाय, क्षेत्र व सांस्कृतिक आधार पर साम्यता रखते हैं। इतिहास के प्रारम्भिक काल में इस प्रकार के एक जैसे लोगों के समुदायों को जाति, जन या कबीला कहते थे। इस प्रकार की साम्यता रखने वाली जातियों या कबीलों के लोग किसी निश्चत भूखण्ड पर बस जाते थे और अपना पृथक राजनीतिक संगठन बना लेते थे। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी इस प्रकार के राजनीतिक संगठनों के लिए जनपद या राष्ट्र दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्राचीन ग्रीस में भी इस प्रकार के जनपद होते थे जिन्हें ट्राईबल स्टेट्स कहा जाता था।

राष्ट्रवाद के शाब्दिक अर्थ के साथ–साथ इसका भावनात्मक अर्थ भी होता है जिसके अन्तर्गत जन–समुदाय की समूह चेतना व संस्कृति सम्बन्धी चर शामिल है। इसके अलावाइन चरों में एक जनसमूह का होना, उस समूह के सब व्यक्तियों के बीच वैचारिक साम्यता होना भी शामिल है। इस प्रकार की एकता की भावना से युक्त जन समुदाय की सामूहिकचेतना राष्ट्रीयता कहलाती है। यह अराजनीतिक चेतना है जो एक स्वतंत्र एवं समप्रभु राष्ट्र में यह राजनीतिक चेतना का रूप प्राप्त कर लेती है। प्रस्तुत शोध–लेख में राष्ट्रवाद की अवधारणा के चरों के सापेक्ष भारतीय राष्ट्रवाद के विकास को समझने का प्रयास किया गया है। इस शोध–लेख के प्रथम भाग में राष्ट्रवाद की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए, तत्पश्चात् द्वितीय भाग में भारतीय राष्ट्रवाद के विकास को ऐतिहासिक आधार पर समझने का प्रयास करेंगे।

I राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास

एक जाति से उत्पन्न जन–समूह के मध्य कई बातों की समता होना विशेषकर सारंकषतिक आधार पर आधरित है। अतः राष्ट्रवाद एक जटिल एवं बहुआयामी अवधारणा है जो राजनीतिक चिन्तन में समय के साथ –साथ और विभिन्न चरों के विस्तार के साथ–साथ और भी जटिल होती चली गयी है। राष्ट्रवाद और आधुनिक राज्य के इतिहास के बीच एक संरचनात्मक सम्बन्ध है। आधुनिक राज्य के उदय ने राष्ट्रवाद की अवधारणा को संरचित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मध्ययूगीन यूरोप में राज्य–सत्ता दो मुख्य केन्द्रो में विभाजित थी, वह केन्द्र थे – राज्य व धार्मिक संस्था।आधुनिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के उदित होने के कारणों में मध ययुग की परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस युग में राजतन्त्र को चर्च के साथ–साथ सामन्तों को भी क्रमशः क्षैतिज व स्तम्भीय रूप में सत्ता का साँझीदार बनाना पड़ता था। यूरोप में चर्च 'शक्तिशाली राज–शक्ति' के रूप में स्थापित हो गया था। चर्च राजकीय धर्म का संरक्षक होने के कारण लगातार अपनी शक्ति में वष्द्वि कर रहा था और उसकी अपनी संरचानएँ विकसित हो रही थी। राजतन्त्र व चर्च के बीच इस असहज व संघर्षपूर्ण सम्बन्ध ने राष्ट्रवाद के लिए उपजाऊ जमीन तैयार की। राजनीतिक संघर्षों के कारण राज्यों की भौगोलिक सीमाएँ भी निरन्तर परिवर्तित होती रहती थी। राजतन्त्र, चर्च व सामन्तोंकी सत्ता– साँझेदारी के कारण

राजनीति, शासन और संस्कषति विकेन्द्रित रूप सेचल रहे थे। उस काल में समुदाय, संस्कषति, भाषा व राष्ट्रवाद के चरों के आधार पर यूरोप विविधताओं से परिपूर्ण था। कालान्तर में इग्लैंड व फ्रांस में 'औद्योगिकीकरण' की क्रान्ति के साथ पूँजीपति वर्ग का उदय हुआ। चर्च–सुधार आन्दोलन ने चर्च की राजनीतिक स्थिति को कमजोर किया। राज्यों की भौगोलिक सीमाएँ भी ध ीरे–धीरे निश्चित होने लगी और भू–क्षेत्रीय सीमाओं का अनुपालन होने लगा। प्रौद्योगिकी तकनीकी विकास के कारण परिवहन, संचार व शासन भी सुदष्ढ़ होने लगा। परिणामतः सम्प्रभुता, केन्द्रीकष्त व स्थिर भू–सीमाओं की अवधारणा से परिपूर्ण एक नयी राज–सत्ता का निर्माण हुआ। इसी नींव पर आधुनिक राष्ट्र–राज्य का भवन निर्मित किया गया। अब इस राजनीतिक सर्वसत्तावादी परिवेश में सांस्कषतिक, भाषाई और जातीयसमरूपता वाले 'राष्ट्र' की स्थापना की सारी परिस्थितियाँ विधमान थी। परिवर्तित होते परिवेश में सामन्तवाद की जगह सत्ता सहयोगी अभिजन वर्ग (पूँजीपतियों) ने ले ली थी।इस अभिजन वर्ग के बीच राष्ट्रवाद का दर्शन पनपना प्रारम्भ हुआ। 1688 ई0 की इग्लैंड की 'शानदार क्रान्ति' में इस अभिजन को बड़ी जीत हासिल हुई और उनके लिए लैटिन भाषा के 'नेशियों' शब्द का महत्व बढ़ गया, इसी से ' नेशन' की उत्पत्ति हुई जो राष्ट्रवाद का आधार बना। इसके बाद संसदों में पहुँचे अभिजन वर्ग की शक्ति में निरन्तर वषद्धि होती चली गयी और उन्होंने पूरे यूरोप में स्वंय को राष्ट्रवाद की विचारधारा के तले एक सूत्रबद्व कर लिया।अभिजन वर्ग ने जर्मनी में इस अवधारणा का प्रयोग आधुनिक राज्य से राजनीतिक सौदेबाजी करके किया तो साधारण जन ने इसका प्रयोग आततायी राजसत्ता से खुद को बचाने व सरंक्षित करने में किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी मे सत्ता परिवर्तन व फ्रांस में क्रान्ति हुई। अभिजन वर्ग हमेशा ही इन परिवर्तनों का सूत्रधार रहा है और आम जनता ने इसमें ऊँची–ऊँची लहरों का काम किया। इस प्रकार यूरोप में प्राक्–आधुनिक, विकेन्द्रित राजनीतिक सत्ता, सर्वसत्तावादी राज्य में परिवर्तित हो गयी और फिर राष्ट्रवादी विचारों के प्रभाव से संवैध ानिक राज्य में परिवर्तित हो गयी। राष्ट्रवाद 19 वीं सर्दी तक जन साधारण के लिए भी राजनीतिक साँझेदारी का कारक बन चुका था।

चर्च/सामान्त विभक्त शासन पूंजीपति/अभिजनवर्ग संवैधानिक शासन राज्यवर्ग राजतन्त्र राजसत्ता राष्ट्रवाद

यूरोप में कई बार बहुजातीय, बहुभाषी राज्य व बहुराष्ट्रीय राज्य बने एवं टूटे और राष्ट्रवाद का आधार मजबूत होता रहा। यही अवधारणा जब यूरोप से बाहर एशिया, निकलकर अफ्रीका व अमेरिका तक पहुँची तो आंचलिकता के प्रभाव और विशेषताओं केकारण इसके विभिन्न रूप विकसित हुए और राष्ट्रवाद, उपनिवेशवादी विचारधारा व शासन के विरूद्व राष्ट्रवादी आन्दोलन के रूप में सामने आया। सभी महाद्वीपों में नये–नयें राष्ट्रो का उदय हुआ जो आज स्वतन्त्र व सम्प्रभुत्ता सम्पन्न राज्यों के रूप में अस्तित्व में है।

अर्नेस्ट ग्लैनर के अनुसार राष्ट्रवाद राजनीतिक वैधता का सिद्वान्त है जो यह मांग करता है कि नष्सीमाएं राजनीतिक सीमाओं को सीमित न करें। सिद्वान्तः राष्ट्रीय व राजनीतिक ईकाई में समरूपता होनी चाहिए। राष्ट्रवाद एक भावना और आन्दोलन के रूप मे इसी सिद्वान्त पर चलता

है। किसी राजनीतिक या समाजशास्त्रीय दर्षष्टिकोण से राष्ट्रवाद के तीन रूप विकसित हुए हैं। इनको इस प्रकार वर्गीकष्त किया जा सकता है–

1. स्थायीत्तवादी राष्ट्रवाद – इस धारणा में राष्ट्रवाद को प्राकषतिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

2. संजाति–प्रतीकवादी राष्ट्रवाद – इस धारणा में एतिहासिक प्रतीकों व व्यवैक्तिक सम्बन्ध ाों के आधार पर राष्ट्रवाद को स्वीकार किया जाता है।

3. आधुनिकतावादी राष्ट्रवाद – इस धारणा में आधुनिक समाज की संरचनात्मक परिस्थितियों के आधार पर राष्ट्रवाद को स्वीकार किया जाता है।

संरचनात्मक चरों के रूप में राष्ट्रवाद के रूप में चरों को हम जाति,धर्म, भाषा, संस्कषति तथा परम्पराओं की साम्यता, वैचारिक आधारों की समानता और साम्य– इतिहास के रूप में जानते हैं। समान ऐतिहासिक परम्परा किसी जनसमूह में इस भावना का संचार करती है कि वे ऐतिहासिक रूप से अपने पूर्वजों के आदर्शों तथा कषतियों को बनाये रखने तथा उनका अनुसरण करने की भावना से संचालित है और यही भाव उनमें राष्ट्रीय एकता का संचार करने में महत्वपूर्ण योगदान करता है। इतिहास की भांति किसी जनसमूह के विभिन्न प्रकार के हितों के मध्य उपस्थित साम्यता भी उस जनसमूह में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करती है।अतः राष्ट्रवाद एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्रीयताएँ राजनीतिक ईकाइयों के रूप में परिवर्तित होती है। यह आध्यात्मिक,मैनोवैज्ञानिक व राजनीतिक मनः स्थिति है। प्रस्तुत–लेख का उद्देश्य इसी सन्दर्भ में भारत की राष्ट्रवाद की अवधारणा को इतिहास–लेखन में खोजना है।

II भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास एवं स्वरूप

भारत में राष्ट्रीयता की चेतना और राष्ट्रवाद की संकल्पना उतनी ही पुरानी है जितना कि विश्व का इतिहास।भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद वेद में कहा गया है – वयं राष्ट्र जाग्रयाम्। किन्तु यह कहना सचमुच कठिन है कि यहाँ राष्ट्र शब्द का प्रयोग उतने विस्तृत भारत के हुआ है जितना कि वह आज है। उस समय निश्चित ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग पश्चिमी गंगा–सिन्धु के मैदानों में बसे उन अनेक छोटे राज्यों में से प्रत्येक के लिए किया गया था जिन पर आर्यों का प्रभाव था और जिन्हें उत्तर वैदिक काल में जनपद कहा गया है। साहित्यिक दृष्टि से राष्ट्र का अर्थ में प्रायः राज्य से होता है। लेकिन आधुनिक अर्थ में वस्तुतः राष्ट्र अपने सदस्यों को एक अविभाज्य इकाई में बाँधे रखता है। भारतीय चिन्तक राष्ट्रवाद को एक गम्भीर आन्तरिक जीवन से स्पन्दित सांस्कृतिक सत्ता मानते रहे हैं। स्वामी दयानन्द, योगीराज अरविन्द घोष, बंकिमचन्द्र चटर्जी आदि भारतीय नेताओं ने पाश्चात्य राष्ट्रवाद के उस भौतिक सिद्वान्त का खण्डन किया जो इसे पूँजीवाद की एक गौण और विकृत उपज मानता है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि– '' भारतीय राष्ट्र मर नहीं सकता और उस समय तक अमर रहेगा जब तक कि इसके लोग आध्यात्मिकता को नहीं छोड़गें।'' उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें भारत के प्राचीन साहित्य में खोज निकाली है।

वैदिक संहिता के पष्थ्वी सूक्त के **" माता भूमिः पुत्रो अंह पषथिव्या "** में भूमि को माता और मनुष्य को उसका पुत्र कहकर प्रगाढ़ मातष्भूमि प्रेम की जो उदात्त भावना व्यक्त की गई है, वह बुद्ध पूर्व युग में ही विकसित हो चुकी थी। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त से भी वस्तुतः वही ध्वनि निकलती है, जो आजकल पूरे राष्ट्र के लिए खड़े होने के मुहावरे से निकलती है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि जो साँस्कषतिक विशिष्टता की मूल धारणा थी उसी ने कालक्रम में विकसित होकर भारत की राष्ट्रीयता का रूप धारण कर लिया। अतः स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रवाद संस्कषति की कुक्षि से उत्पन्न हुई हैं। भारतीय संस्कषति–भारतीय राष्ट्रवाद का रचनात्मक एवं राष्ट्रीयता का भावनात्मक आधार है। प्राचीन भारत में विभिन्न भौगोलिक इकाइयों के अस्तित्व के सन्दर्भ में ई0 वी0 हैवल का मत है कि 'यदि हमारे पास आँखे हो तो हम देख सकते है कि जातीय एवं धार्मिक विविधताओं के बावजूद समूचे भारत की आत्मा एक है इस तर्क में काफी दम है कि भारत में साँस्कषतिक एकता है तथा यह एकता सदियों से चली आ रही है'। हमारे बीच सजातीयता की चेतना उन मूल्यों आधारित है जो हमें पुरखों से विरासत में मिली है और जिसमें हम समान रूप से साँझीदार है। प्राचीनकाल में भारत भूमि पर कितने ही छोटे–छोटे राज्य थे परन्तु देश राष्ट्रीयता की दषष्टि से एक था। कमल मुखर्जी लिखते है कि – ''भारत में निवासियों को एक सूत्र में बाँधे रखने का काम धर्मसम्मत राज्य की धारणा में किया है जिसका उदय वैदिक काल में हुआ था।'' चक्रवर्ती सम्राट की धारणा केवल राजनीतिक ही नहीं थी बल्कि साँस्कषतिक भी थी। भारत का आदर्श एक साम्राज्य की स्थापना करना ही नहीं वरन् समषद्धि एवं अनुशासन द्वारा एक सांस्कषतिक राज का निर्माण करना है। आचार्य चाणक्य द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक चिन्तन ने भौगोलिक एकता, राज्य विस्तार को भी राष्ट्रवाद का पर्याय बना दिया है। इस प्रकार प्राचीनकालीन राजनीतिक संगठनों के निर्माण में राष्ट्रवादी प्रवषत्ति पायी जाती थी। प्राचीन भारत में राष्ट्रवाद आधुनिक राष्ट्रवाद से भिन्न स्वरूप इसलिये रखता है कि क्योंकि उस समय संचार व यातायात के साधनों का विस्तार नहीं था। प्राचीन भारत के भू भाग पर अशोक, चन्द्रगुप्त और अकबर के शासनकाल में कुछ हद तक आधुनिक राष्ट्रवाद की हल्की सी नींव पड़ी।

आठवीं सदी तक आते–आते उत्तर भारत में साम्राज्यों का युग समाप्त हो रहा था और उनके स्थान पर अनेक, लगभग अनगिनत राज्यों का उदय हो रहा था। उस समय का कोई भी शासक राष्ट्र की रक्षा की चेतावनी सुनने की स्थिति में नहीं था। वे अपनी महत्वकांक्षाओं एवं आत्मरक्षा की भावना से संचलित हो रहे थे। बारहवीं सदी तक आते–आते भारत के चित्र में सामारिक, राजनीतिक, धार्मिक प्रतिमानों के रूप में ब्राह्मण पुजारी, जैन श्रावक, व्यापारी, सामान्त एवं राजा सभी जनता के शोषण पर फल–फूल रहे थे। क्षत्रिय तंत्र कमजोर हो चुका था। इसी कारण वे विदेशी आक्रमणों के सामने नहीं टिक पाये।तब से चार शताब्दियों तक राजवंशो की प्रतिद्वद्धंता, आक्रमण, लूटपाट व अत्याचार चलता रहा। जाति प्रथा ने अपना शिकंजा मजबूत कर लिया था। इसने राज्य की प्रतिरक्षा प्रणाली को ठेस पहुँचायी। इस तरह मध्य युग में देश पर इतने बड़े सकंट के बावजूद तत्कालीन राजनीतिक विचारकों ने राज्य के संगठन को जीवंत बनाने पर कोई विचार नहीं किया। किसी भी राजनीतिक चिन्तक व दार्शनिक ने भारत की सांस्कृतिक एकता

के बल पर राष्ट्रवाद को अपने चिन्तन में कोई स्थान नहीं दिया। विजयनगर और महाराष्ट्र में एकता स्थापित करने के छोटे–छोटे प्रयास अवश्य हुए, परन्तु राष्ट्रवाद की सशक्त प्रवृत्ति पूरे देश में कहीं भी नहीं पनप पाई।

आधुनिक युग की शुरूआत में अमेरिका और फ्रांस महान राजनीतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहे थे। भारत में भी इतिहास का यह काल मुगल शासन के पतन व यूरोपियन शक्तियों के भारत में आधिपत्य का काल था। भारत पर पाश्चात्य परिवर्तनोंका प्रभाव काफी देर से आना शुरू हुआ। बुद्विवाद, सामाजिक न्याय और राजनीतिक अधिकारों की विश्वव्यापी हलचल के भीतर से ही हमारी धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियां मार्ग खोज रही थी। भारत का बौद्धिक पुनर्जागरण आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का महत्वपूर्ण कारण था। भारतीय आत्मा के जागरण की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्रों में हुई क्योंकि यह उसकी सांस्कृतिक और राजनीतिक चिन्तन की विरासत थी और राजनैतिक आत्माचेतना का उदय उसके अपरिहार्य परिणाम के रूप में हुआ। विदेशी धार्मिक सॉंस्कृतिक घुसपैठ के विरोध स्वरूप हिन्दूत्व की प्रतिक्रिया से ही आधुनिक राष्ट्रवाद की प्रथम किरण फूटी। वेदान्त के आधार पर कबीर, नानक फिर से जी उठे। ऐसी दशा में राष्ट्रवाद समन्वय, सुधार और पुनरून्नयन के रूप में उदित हुआ। इसकी रीढ़ वेदान्त है जिसे राजा राम मोहन राय, गोविन्द रानाडे, स्वामी दयानन्द एवं स्वामी विवेकानन्द ने मजबूती प्रदान की। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की यह विरासत साम्राज्यवाद के समक्ष चुनौती के रूप में सामने आयी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सम्वर्द्धन के उपायों– केन्द्रीकृत राज व्यवस्था, यातायात एवं संचार, ने नई सामाजिक आर्थिक संरचनाओं को जन्म दिया और ये संरचनाएँ जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टकराई तो राष्ट्रवाद का वाहक बन गयी।

भारतीय पुनर्जागरण मूलतः सांस्कषतिक स्वरूप का था, यूरोपीयन पुनर्जागरण की भांति बौद्धिक, कलात्मक अथवा राजनीतिक नहीं। यूरोपीयन पुर्नजागरण की धारणा ने चर्च की सत्ता से छुटकारा पाने के लक्ष्य पर कार्य किया इसके विपरित भारत का पुनर्जागरण अतीत की गहराइयों का अनुसंधान था और उसे आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुरूप बनाने का प्रयास था। भारतीय राष्ट्रवाद एकांगी न होकर एशियाई पुनर्जागरण से पूर्णरूपेण सम्बंधित था।

राष्ट्रवाद की भाँति प्रत्येक आधुनिक संकल्पना, शक्ति या विचारधारा स्वयं को ऐतिहासिक आधार पर प्रमाणित करने की कोशिश करती है। इतिहास सदैव ही अवधारणा को सत्यापन व औचित्य आधार प्रदान करता है। इसलिए राष्ट्रवाद की अवधारणा को भारत के इतिहास व राजनीतिक चिन्तन में तलाश करना उसको सशक्त रूप प्रदान करने की दिशा में यह एक प्रयास होगा। भारतीय राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक खोज को चार विभिन्न परिपेक्ष्य में समझना आवश्यक है।

1. राष्ट्रवाद का औपनिवेशिक परिपेक्ष्य।
2. राष्ट्रवाद का राष्ट्रवादी परिपेक्ष्य।
3. राष्ट्रवाद का मार्क्सवादी परिपेक्ष्य।

4. राष्ट्रवाद का उपाश्रित परिपेक्ष्य।

भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में प्रथम, **राष्ट्रवाद के औपनिवेशिक या साम्रज्यवाद या कैम्ब्रिज परिपेक्ष्य** में इस तथ्य को नकारा जाता है कि यह औपनिवेशिक शक्ति के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक शोषण के विरूद्व पनपा, विकसित हुआ और मजबूत हुआ। इस परिपेक्ष्य की यह धारणा है कि साम्राज्यवाद ने भारत में सभ्यता और सामाजिक सुधार स्थापित किए और उसने भारत में आधुनिकता व नव जाग्रति के सिद्वान्त व नियम स्थापित किए। इस परिपेक्ष्य की मान्यता के अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद जन आन्दोलन न होकर अभिजन वर्ग की आवश्कता की उपज था। इस धारणा के अनुसार राष्ट्रवाद के अन्तर्गत जाति, धर्म के आध ाार पर समूहों का निर्माण किया गया जो भारतीय अभिजन वर्ग के निजी हितों की पूर्ति का साध ान था। द्वितीय, **भारतीय राष्ट्रवाद के राष्ट्रवादी परिपेक्ष्य** में राष्ट्रवाद को एक सत्ता व भावना के रूप में देखा गया जिसमें स्वतन्त्रता की भावना अन्तर्निहित थी। इस धारणा में साम्राज्यवादी विचारधारा को शोषक के रूप में माना गया। तृतीय भारतीय राष्ट्रवाद के पटल पर **राष्ट्रवाद का मार्क्सवादी परिपेक्ष्य** बाद में सामने आता है। यह कार्ल मार्क्स के मूलभूत सिद्वान्तों पर आधारित है तथा उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की परिणति मानता है। व्लादिमीर, लेनिन, रोजा लैवजमबर्ग ने इस धारणा को पोषित किया। इस परिपेक्ष्य ने राष्ट्रवाद को उच्चवर्गीय देशी बुर्जआ की विचारधारा के रूप में विश्लेषित किया। भारत में रजनीपामदत्त, ए0 आर0 देसाई राष्ट्रवाद की इस धारणा के संस्थापक थे। उन्होनें भारतीय राष्ट्रवाद में किसानों व मजदूरों को अनदेखा किए जाने की बात रखी। इनके अनुसार स्वतन्त्रता आन्दोलन में राष्ट्रवाद की प्रकृति विरोधाभासी और द्वैधवृत्तिक है। राष्ट्रवाद के चतुर्थ परिपेक्ष्य –**उपाश्रित परिपेक्ष्य** में भी राष्ट्रवाद को शोषणकारी व प्रभुत्ववादी विचारधारा के रूप में व्याख्यित किया गया है। इसमें भी साम्राज्यवाद के साथ–साथ राष्ट्रवादी की शोषणवादी प्रकृति के आधार पर आलोचना की गयी है। मार्क्सवाद से भिन्नता रखते हुए यह धारणा मानती है कि भारतीय राष्ट्रवाद, जाति, लिंग, धर्म और नस्ल पर आधारित विभाजन के कारण शोषक प्रकृति का है और इसने ऐतिहासिक गौरवशाली व्याख्या में समाज के उपेक्षित अंश की उपेक्षा की है। ये उपेक्षित अंश–दलित, महिला, आदिवासी समाज की आवाज है।

उपरोक्त चारों परिपेक्ष्य में भारत के राष्ट्रवाद को धारणा के चार आयाम से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैंकि आधुनिक युग में यह मुख्यतः **राष्ट्रवादी परिपेक्ष्य** ही स्वीकार्य है। यद्यपि राष्ट्रवाद के उपाश्रित परिपेक्ष्य को राष्ट्रवादी परिपेक्ष्य के सापेक्ष रख कर इस एक उचित निष्कर्ष के करीब पहुँच सकते हैं। इसी सन्दर्भ में भारत में राष्ट्रवाद को ऐतिहासिक आधार को समझना आवश्यक है। भारत के राष्ट्रवाद की विकास –यात्रा के इतिहास के मूल से ही समझा जा सकता है।

उपरोक्त अध्ययन से प्राचीन युग से लेकर आधुनिक भारत के राष्ट्रवाद का अध्ययन करने के उपरान्त राष्ट्रवाद के विभिन्न रूप सामने आये, वर्तमान समय में भी राष्ट्रवाद की अहम भूमिका है जो राष्ट्रीय हितों को सम्वर्धन व संरक्षण प्रदान करती है। आज भी देश के नागरिक अपने देश,

संस्कृति, रीति–रिवाजों, धर्म में विश्वास करते हुए देश के संविधान का पालन करते हैं। राष्ट्रवाद भारत को एक राजनीतिक, भौगोलिक ईकाई के रूप में स्थापित करने की मैनोवैज्ञनिक ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक आधार पर सर्वसिद्ध अवधारणा है।

सन्दर्भ सूची

1. सुनलिना कुमार, '' नैशननलिज्म'', राजीव भार्गव व अशोक आचार्य द्वारा सम्पादित ' पोलिटिकल थियरी एन इन्ट्रोडक्शन, पियर्स लोंगमेन, नयी दिल्ली, 2008।

2. एस0 सेदख मार्षिसस्ट थियरी एण्ड नेशन लिस्ट पॉलिटिक्स, सेज, नयी दिल्ली,1995।

3. बिपनचन्द्र ''आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद '2005।

4. शेखर बंदोप्पाध्याय ''फरोम प्लासी टू पारटीशनः ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इन्डिया, नयी दिल्ली, ओरिन्ट ब्लैकसवन प्राईवेट लिमिटेड, 2004।

5. नदीम हसनेन,''समकालीन भारतीय समाज एक समाजशास्त्रीय परिदष्य,'' भारत बुक सेन्टर, लखनऊ 2004।

6. वी.पी.वर्मा, ''आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन,'' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा–3।

7. इंडियन जनरल ऑफ सोसाइटी ऑफ पोलिटिक्स वोल्यम 3।

8. जनरल ''इडियन पोलटिकल सांइस ऐसिशेशन।

9. इकबाल नारायण राजनीति शास्त्र के मूल सिद्वान्त, रतन प्रकाशन मन्दिर।